[2013] 1 एस.सी.आर. 1129

रमेश कुमार सोनी

बनाम

मध्य प्रदेश राज्य

(आपराधिक अपील क्रमांक 353/2013)

26 फ़रवरी 2013

[टी.एस. ठाकुर और फकीर मोहम्मद इब्राहिम कलीफुल्ला, जे.जे]

दण्ड प्रक्रिया संहिता (मध्यप्रदेश संशोधन) अधिनियम 2007:

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की पहली अनुसूची के संशोधन के तहत् धारा 467, 468 और 471 के दंडनीय अपराध को मध्य प्रदेश राज्य में सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय बनाया गया- अपराध संशोधन से पहले किया गया था लेकिन आरोप पत्र संशोधन लागू होने के बाद दायर किया गया - माना गया: अपीलकर्ता के ख़िलाफ़ संस्थित मामले का आरोप पत्र प्राप्त होने पर मजिस्ट्रेट, मामले को सत्रन्यायालय में कमिट करने के लिए बाध्य था क्योकि जिन अपराधों के लिए उस पर आरोप लगाया गया था उनमें से तीन अपराधों की सुनवाई केवल सत्र न्यायालय द्वारा की जा सकती थी - इस तथ्य के अलावा कि संशोधन लागू होने की तारीख तक अपीलकर्ता के खिलाफ कोई मामला शुरू नहीं किया गया था और न ही मजिस्ट्रेट ने अपीलकर्ता खिलाफ संज्ञान लिया था। मुकदमे के मंच को परिवर्तित करने वाला कोई भी संशोधन, संशोधन अधिनियम में इसके विपरीत किसी भी

बात के होते हुए सैद्धांतिक रूप से भूतलक्षीप्रभाव से लागू होगा - अपीलकर्ता अपने मुकदमे के लिए मंच के निहित अधिकार का दावा नहीं कर सकता है, उसे ऐसा कोई अधिकार नहीं है मान्यता प्राप्त - मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ के फैसले को खारिज कर दिया गया। भविष्यलक्षी प्रभाव से लागू निर्णयको ख़ारिज किया ।संशोधन,भूतलक्षी प्रभाव फोरम को स्थानांतरित कर रहा है क्।दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 - की पहली अनुसूची,मध्य प्रदेश राज्य में संशोधित के दी गई

दण्ड प्रक्रिया संहिता (मध्यप्रदेश संशोधन) अधिनियम 2007, द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की पहली अनुसूची को 22.2.2008 से संशोधित किया गयाथा और, अन्य अपराधों के अलावा, आईपीसी की धारा 467, 468 और 471 के तहत दंडनीय अपराधों को प्रथम श्रेणी मजिस्ट्रेट की अदालत के बजाय मध्य प्रदेश राज्य में सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय बनाया गया था। नतीजतन, न्यायिकमजिस्ट्रेट, प्रथम श्रेणी ने प्रासंगिक अपराधों से जुड़े सभी मामलों को सत्र न्यायालय को सौंप दिया। एक सत्र न्यायाधीश द्वारा दिए गए संदर्भ पर, उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ ने माना कि 22.2.2008 को न्यायिक मजिस्ट्रेट प्रथम श्रेणी के न्यायालय के समक्ष लंबित सभी मामले संशोधन से अप्रभावित रहेंगे और न्यायिक मजिस्ट्रेट प्रथम श्रेणी द्वारा विचारणीय रहेंगे । न्यायालय ने आगे कहा कि ऐसे सभी मामले जो पहले न्यायिक मजिस्ट्रेट प्रथम श्रेणीके पास लंबित थे और सत्र न्यायालय को भेज दिये थे उन मामलो को,सत्र न्यायालय कानून के

अनुसार वापस न्यायिक मजिस्ट्रेट प्रथम श्रेणी के पास भेजेगा ।उक्त निर्णय पर भरोसा करते हुए अपीलकर्ता, जिसके खिलाफ आईपीसी की धारा 408, 420, 467, 468 और 471 के तहत दंडनीय अपराध का मामला दर्ज किया गया था, ने एक आवेदन ट्रायल कोर्ट के समक्ष दायर किया कि न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा मामले की सुनवाई के लिए छूट के लिए इसी तरह के निर्देश की मांग की जा रही है। अपीलकर्ता का मामला यह था कि पुलिस ने अपीलकर्ता के खिलाफ आरोप पत्र दायर नहीं किया था और मामले में जांच संशोधन लागू होने की तारीख तक लंबित थी, अपीलकर्ता ने इस अधिकार का अधिग्रहण कर लिया कि 1973 संहिता कीपहली अनुसूची में निर्दिष्ट फोरम द्वारा मुकदमे की सुनवाई और सुनवाई के मंच को सत्र न्यायालय में स्थानांतरित करने वाला कोई भी संशोधनउसके मामले में आकर्षित नहीं हुआ। ट्रायल कोर्ट ने माना कि चूंकि संशोधन लागू होने की तारीख तक मजिस्ट्रेट के समक्ष कोई आरोप पत्र दायर नहीं किया गया था, मामला विशेष रूप से सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय था। उच्च न्यायालय ने अपीलकर्ता द्वारा दायर पुनरीक्षण याचिका को खारिज कर दिया

अभियुक्त द्वारा दायर की गई त्वरित अपील में न्यायालय के समक्ष विचारणीय प्रश्न यह था: "क्या संशोधनका भूतलक्षी प्रभाव रहेगा और केवल संशोधन अधिसूचित होने की तारीख के बाद किए गए अपराधों पर लागू होगा या उन मामलों को नियंत्रित करेगा जो तारीख पर लंबित थे संशोधन या उसके लागू होने के बाद दायर किया गया हो सकता है"।

न्यायालय ने अपील खारिज करते हुए-

अभिनिर्धारित किया: 1.1 दंड प्रक्रिया संहिता किसी मामले को संस्थित करने की कोई परिभाषा प्रदान नहीं करती है। हालाँकि, यह घिसी-पिटी बात है कि किसी मामले को तभी शुरू किया गया माना जाना चाहिए जब उसमें कथित अपराध का संज्ञान सक्षम अदालत द्वारा ले लिया गया हो। बदले में, मजिस्ट्रेट द्वारा उसके समक्ष दायर तथ्यों की शिकायत पर संज्ञान लिया जा सकता है जो इस तरह के अपराध का गठन करता है। यह तब भी लिया जा सकता है जब पुलिस रिपोर्ट मजिस्ट्रेट के समक्ष लिखित रूप में ऐसे तथ्यों के साथ दायर की जाती है जो एक अपराध बनता है। पुलिस अधिकारी के अलावा किसी अन्य व्यक्ति से सूचना प्राप्त होने पर मजिस्ट्रेट अपने ज्ञान या संदेह के आधार पर भी अपराध का संज्ञान ले सकता है। सत्र न्यायालय के मामले में, कुछ मामलो का सज्ञान का उनकी तरफ़ से विधिवत अधिकार के तहत मजिस्ट्रेट द्वारा लिया जाता है। इसका तात्पर्य यह है कि जब मजिस्ट्रेटकी कोर्ट में कोई मामला स्नस्थित किया जाताहै है तो मजिस्ट्रेटकोर्ट उस अपराध का संज्ञान लेता है चाहे वो मामला शिकायत और हो या पुलिस रिपोर्ट पर और दर्ज किया गया हो । [पैरा 7] [1139-ए-डी]

जमुना सिंह एवं अन्य। बनाम बहदई शाह 1964 एससीआर 37= एआईआर 1964 एससी 1541; देवरापल्ली लक्ष्मीनारायण रेड्डी और अन्य। वी. नारायण रेड्डी और अन्य। 1976 सप्ल. एससीआर 524= (1976) 3

एससीसी 252; कमलापति त्रिवेदी बनाम पश्चिम बंगाल राज्य 1979 (2) एससीआर 717= (1980) 2 एससीसी 91- संदर्भित

1.2 संशोधन अधिनियम के लागू होने की तारीख तक अपीलकर्ता के खिलाफ मजिस्ट्रेट के समक्ष कोई मामला लंबित नहीं था। ऐसा होने पर, आरोप-पत्र की प्राप्ति पर मजिस्ट्रेट, जो अपीलकर्ता के खिलाफ एक मामले की स्थापना के समान था, मामले को सेशनअदालत में सौंपने के लिए बाध्य था क्योंकि जिन अपराधों के लिए उस पर आरोप लगाए गए थे उनमें से तीन की सुनवाई केवल सत्रन्यायालय द्वारा ही की जा सकती थी। उस दृष्टिकोण से, सत्र न्यायाधीश और उच्च न्यायालय भी यह मानने में पूरी तरह से न्यायसंगत थे कि मजिस्ट्रेट द्वारा पारित कमिट करने का आदेश कानूनी रूप से वैध आदेश था और अपीलकर्ता पर केवल उसी सत्र न्यायालय द्वारा मुकदमा चलाया जा सकता था, जहां मामला सौंपा गया था। . सी [पैरा 8] [1139-जी-एच; 1140-ए-सी]

1.3 मौजूदा मामले में आपराधिक प्रक्रिया संहिता में संशोधन के प्रभाव से अभियुक्तों के मुकदमे के मंच को प्रथम श्रेणी मजिस्ट्रेट की अदालत से सत्र अदालत में स्थानांतरित करना पड़ेगा। इस बात के होते हुए भी कि संशोधन लागू होने की तिथि पर अपीलकर्ता के खिलाफ कोई मामला शुरू नहीं किया गया था और न ही मजिस्ट्रेट ने अपीलकर्ता के खिलाफ संज्ञान लिया था, मुकदमे के मंच को स्थानांतरित करने वाला कोई भी संशोधन सैद्धांतिक रूप से भूतलक्षीप्रभाव का होना चाहिए। अपीलकर्ता

अपने मुकदमे के लिए मंच के निहित अधिकार का दावा नहीं कर सका, क्योंकि ऐसा कोई अधिकार मान्यता प्राप्त नहीं है। [पैरा 13] [1144-ई-जी]

न्यू इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम श्रीमती। शांति मिश्रा, वयस्क 1976 (2) एससीआर 266 = (1975) 2 एससीसी 840; हितेंद्र विष्णु ठाकुर एवं अन्य। आदि आदि बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य। 1994 (1) पूरक। एससीआर 360 (1994) 4 एससीसी 602; सुधीर जी. अंगुर और अन्य। वी. एम. संजीव और अन्य। 2005 (4) पूरक। एससीआर 851 (2006) 1 एससीसी 141; नानी गोपाल मित्रा बनाम बिहार राज्य 1969 एससीआर 411= एआईआर 1970 एससी 1636; अनंत गोपाल शेरोरे बनाम बॉम्बे राज्य 1959 एससीआर 919 = एआईआर 1958 एससी 915- पर भरोसा किया गया।

शिव भगवान मोती राम सरावजी बनाम ओंकारमल ईशर दास और अन्य। (1952) 54 बॉम एलआर 330- अनुमोदित

मनुजेन्द्र दत्त बनाम पूर्णेदु प्रोसाद रॉय चौधरी और ए अन्य। 1967 एससीआर 475 एआईआर 1967 एससी 1419, आयकर आयुक्त, बैंगलोर बनाम श्रीमती। आर. शरदम्मा 1996 (3) एससीआर 1200= (1996) 8 एससीसी 388 और आर. केपिलानाथ (मृत) एलआर के माध्यम से। वी. कृष्णा 2002 (5) सप्ल, एससीआर 66 (2003) 1 एससीसी 444- संदर्भित।

वी. धनपाल चोटियार बनाम यसोदल अम्मल 1980 (1) एससीआर 334= (1979) 4 एससीसी 214 प्रतिष्ठित।

1.4 पूर्ण पीठ द्वारा यह माना गया कि संशोधित प्रावधान को पॉन्डिंग केस पर लागू न करने वाला दृष्टिकोण सिद्धातिक रूप में सही नहीं है। इसलिए, पूर्ण पीठ द्वारा दिया गया निर्णय संभावित तोर पर खारिज कर दिया जाएगा, ऐसा इसलिए होगा क्योंकि पूर्ण पीठ के आदेशों के तहत सत्र न्यायालय से मजिस्ट्रेट प्रथम श्रेणी के न्यायालय में वापस भेजे गए मामलों की सुनवाई भी समाप्त हो सकती है या आगामी चरण में हो सकती है। ऐसे मामलों में इस स्तर पर फोरम में कोई भी बदलाव अभियुक्तों के लिए अनावश्यक और परिहार्य कठिनाइयों का कारण बनेगा, उन मामलों में यदि उन्हें इस न्यायालय द्वारा व्यक्त किए गए संशोधन और दृष्टिकोण के प्रकाश में सुनवाई के लिए सेशन न्यायालय में विचरणके लिए भेजा जाना था। [पैरा 19] [1148-सी-ई]

पुनः: दण्ड प्रक्रिया संहिता (म.प्र. संशोधन) अधिनियम, 2007:2008(3) एमपीलजे311 द्वारा दण्ड प्रक्रिया संहिता की प्रथम अनुसूची में किए गए संशोधन- को खारिज कर दिया गया।

1.5 चाहे कुछ भी हो अनावश्यक कठिनाई और विसंगतियों से बचने के लिए, इस न्यायालय द्वारा भविष्यलक्षी प्रभाव के सिद्धांत को लागू किया गया है। मौजूदा मामला वह है जिसमें इस न्यायालय को यह स्पष्ट करने

की आवश्यकता है कि मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ के फैसले को खारिज करने से उन मामलों पर कोई असर नहीं पड़ेगा जिनकी सुनवाई पहले ही हो चुकी है या जो मजिस्ट्रेट के समक्ष अग्रिम चरण में हैं।[पैरा 20 और 25] [1148-एफ; 1150-जी]

आई.सी. गोलक नाथ और अन्य बनाम पंजाब राज्य और अन्य 1967 एससीआर 762= एआईआर 1967 एससी 1643; अशोक कुमार गुप्ता एवं अन्य. वि. उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य. 1997 (3) एससीआर 269 = (1997) 5 एससीसी 201; बाबूराम बनाम सी.सी. जैकब और अन्य. (1999) 3 एससीसी 362; हरीश ढींगरा बनाम हरियाणा राज्य एवं अन्य। 2001 (3) सप्ल. एससीआर 446 = (2001) 9 एससीसी 550; सरवन कुमार और अन्य. वी. मदन लाल अग्रवाल 2003 (1) एससीआर 918 = (2003) 4 एससीसी 147- पर भरोसा किया।

राजस्थान राज्य सड़क परिवहन निगम एवं अन्य. वीबाल मुकुंद बैरवा 2009 (2) एससीआर 161 (2009) 4 एससीसी 299-निर्दिष्ठ किया

केस क़ानून के संदर्भ में

1964 एससीआर 37	निर्दिष्ट किया	पैरा 7
1976 (0) सप्ल. एससीआर 524	निर्दीष्ट किया	पैरा 7
1979 (2) एससीआर 717।	निर्दिष्ट किया	पैरा 7

1976 (2) एससीआर 266।	निर्दिष्ट किया	पैरा 9
1994 (1) सप्ल. एससीआर 360	पर भरोसा	पैरा 10
2005 (4) सप्ल. एससीआर 360	पर भरोसा	पैरा 11
(1952) 54 बम एलआर 330	खारिज किया गया	पैरा 11
1967 एससीआर 475	विशिष्ट	पैरा 14
एलएल 1996 (3) एससीआर 1200	विशिष्ट	पैरा 14
2002 (5) सप्ल। एससीआर 66	विशिष्ट	पैरा 14
1980 (1) एससीआर 334	पर भरोसा	पैरा 17
1969 एससीआर 411	पर भरोसा	पैरा 18
1959 एससीआर 919	पर भरोसा	पैरा 20
1967 एससीआर 762	पर भरोसा	पैरा 20
1997 (3) एससीआर 269	पर भरोसा	पैरा 20
(1999) 3 एससीसी 362	पर भरोसा	पैरा 21ए
2001 (3) सप्ल. एससीआर 446	पर भरोसा	पैरा 22
2003 (1) एससीआर 918	पर भरोसा	पैरा 23

2009 (2) एससीआर 161 पर भरोसा पैरा 24

आपराधिक अपीलीय क्षेत्राधिकार: आपराधिक अपील संख्या 353/2013

मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय जबलपुर मुख्य्यपीठ द्वारा आपराधिक पुनरीक्षण संख्या 713/2011 में निर्णय एवं आदेश दिनांक 02.05.2011 से उत्पन्न।

जून चौधरी, सुमिता चौधरी, प्रभात कुमार, अंशुमन अशोक, डॉ. कैलाश चंद, अपीलकर्ता की ओर से।

न्यायालय का निर्णय इनके द्वारा सुनाया गया-

टी.एस. ठाकुर, न्यायाधिपति. 1. अनुमति प्रदान की गई।

2. इस अपील में जो संक्षिप्त प्रश्न निर्धारण के लिए आता है वह यह है कि क्या अपीलकर्ता पर आईपीसी की धारा 408, 420, 467, 468 और 471 के तहत दंडनीय अपराधों के लिए न्यायिक मजिस्ट्रेट, प्रथम श्रेणी द्वारा मुकदमा चलाया जा सकता है, इस तथ्य के बावजूद कि आपराधिक प्रक्रिया संहिता, 1973 की पहली अनुसूची के अनुसार दंड प्रक्रिया संहिता (मध्य प्रदेश संशोधन) अधिनियम 2007 द्वारा संशोधित के तहत, दंड संहिता की धारा 467, 468 और 471 के अपराधों को केवल सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय बना दिया गया।जबलपुर ट्रायल कोर्ट के 9वें अतिरिक्त सत्र

न्यायाधीश ने उस प्रश्न का उत्तर नकारात्मक रूप से दिया हैतथा यह प्रतिपादित किया कि संशोधन के बाद अपीलकर्ता पर केवल सैशन न्यायालय द्वारा ही मुकदमा चलाया जा सकता है। उक्त मत की पुष्टि मध्य प्रदेश के उच्च न्यायालय, जबलपुर द्वारा की गई है। ट्रायल कोर्ट द्वारा पारित आदेश के खिलाफ अपीलकर्ता द्वारा एक आपराधिक पुनरीक्षण याचिका दायर की गई। तथ्यात्मक फ़ार्म जिसमें विवाद उत्पन्न होता है उसे निम्नानुसार संक्षेपित किया जा सकता है।

3. आईपीसी की धारा 408, 420, 467, 468 और 471 के तहत दंडनीय अपराध 18 मई, 2007 को थाना भेराघाट में अपीलकर्ता क ख़िलाफ़ अपराध संख्या 129/2007 में दर्ज किया गया था।मामले के पंजीकरण की तिथि पर अपराध दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की पहली अनुसूची के अनुसार प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट द्वारा विचारणीय थे । दंड प्रक्रिया संहिता (मध्य प्रदेश बी संशोधन) अधिनियम 2007 के तहत मध्यप्रदेश अधिनियम 2008 2 के आने के कारण उस स्थिति में बदलाव आया, जिसमें 1973 संहिता की पहली अनुसूची और अन्य अपराध आईपीसी की धारा 467, 468 और 471 के तहत अपराधों की सुनवाई प्रथम श्रेणी मजिस्ट्रेट के बजाय सत्र न्यायालय द्वारा किए जाने बाबत संशोधन किया गया इस संशोधन को 14 फरवरी, 2008 को राष्ट्रपति की सहमति प्राप्त हुई और इसे मध्य प्रदेश राजपत्र (असाधारण) 22 फरवरी,2008 में प्रकाशित किया गया .उपरोक्त संशोधन के परिणामस्वरूप,न्यायिक मजिस्ट्रेट, प्रथम श्रेणी उपरोक्त

प्रावधानों के तहत इस अपराध से जुड़े सभी मामलों को सुनवाईहेतु सेशन न्यायालय में कमिट करेगा। ऐसे ही एक मामले में सत्र न्यायाधीश, जबलपुर ने कानून के निम्नलिखित दो अलग-अलग प्रश्नों पर उच्च न्यायालय का संदर्भ दिया:

1. क्या सीआरपीसी की अनुसूची-1 में 22 फरवरी, 2008 का हालिया संशोधन भूतलक्षी प्रभाव से लागू होगा?

2. नतीजतन, क्या मजिस्ट्रेट प्रथम श्रेणी के समक्ष लंबित मामले, जिनमें साक्ष्य आंशिक या पूर्ण रूप से दर्ज किया गया है, और इस न्यायालय को कमिट किया जाने पर सत्र न्यायालय द्वारा नये सिरे से मुकदमा चलाया जाना है या उसे मजिस्ट्रेट प्रथम श्रेणी को वापस आगे विचारण के लिए भेजा जाना चाहिए?

4. मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय की एक पूर्ण पीठ ने पुन: दण्ड प्रक्रिया संहिता (एम.पी. संशोधन) अधिनियम, 2007 2008 (3) एमपीएलजे 311 द्वारा दण्ड प्रक्रिया संहिता की पहली अनुसूची में संशोधन,के संदर्भ में उत्तर दिया और माना कि सभी मामले जो 22 फरवरी, 2008 को न्यायिक मजिस्ट्रेट प्रथम श्रेणी की अदालत के समक्ष लंबित मामले संशोधन से अप्रभावित रहेंगे और न्यायिक मजिस्ट्रेट प्रथम श्रेणी द्वारा विचारणीय थे क्योंकि संशोधन अधिनियम में स्पष्ट संकेत नहीं था कि ऐसे मामलों को भी सत्र न्यायालय को सौंपा जाना चाहिए। न्यायालय ने आगे

कहा कि ऐसे सभी मामले जो न्यायिक मजिस्ट्रेट प्रथम श्रेणी के समक्ष लंबित थे और सत्र न्यायालय को कमिट किए गए थे, उन्हें कानून के अनुसार न्यायिक मजिस्ट्रेट प्रथम श्रेणी को वापस भेजा जाएगा। संदर्भ का तदनुसार उत्तर दिया गया।

5. पूर्ण पीठ के फैसले पर भरोसा करते हुए अपीलकर्ता ने ट्रायल कोर्ट के समक्ष एक आवेदन दायर किया और न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा मामले की सुनवाई के छूट के लिए इसी तरह के निर्देश की मांग की। अपीलकर्ता ने उपरोक्त निर्णय के अधिकार पर तर्क दिया कि हालांकि पुलिस ने अपीलकर्ता के खिलाफ आरोप पत्र दायर नहीं किया था और मामले की जांच, संशोधन लागू होने की तारीख तक लंबित थी, अपीलकर्ता ने 1973 संहिता की अनुसूची । में निर्दिष्ट एक मंच द्वारा, मुकदमे के विचारण का अधिकार हासिल कर लिया था। मुकदमे के मंच को सत्र न्यायालय में स्थानांतरित करने वाले उक्त प्रावधान में कोई भी संशोधन अपीलकर्ता के मामले की ओर आकर्षित नहीं होता है, जिससे मामले को सत्र न्यायालय में कमिट करना और सत्र न्यायालय के समक्ष अपीलकर्ता के मुकदमा का विचारण अवैध हो जाता है। जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, ट्रायल कोर्ट ने उस विवाद को खारिज कर दिया और माना कि चूंकि संशोधन लागू होने की तारीख तक मजिस्ट्रेट के समक्ष कोई आरोप पत्र दायर नहीं किया गया था, इसलिए मामला विशेष रूप से सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय था। उच्च न्यायालय ने उस दृष्टिकोण की पुष्टि की है और अपीलकर्ता द्वारा

दायर पुनरीक्षण याचिका को खारिज कर दिया है, इसलिए यह वर्तमान अपील है।

6. दंड प्रक्रिया संहिता (मध्य प्रदेश संशोधन) अधिनियम, 2007 निम्नलिखित शब्दों में है:

> "मध्य प्रदेश राज्य में लागू होने पर दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 में और संशोधन करने के लिए, एक अधिनियम ।
>
> भारत गणराज्य के अट्ठावनवें वर्ष में मध्य प्रदेश विधानमंडल द्वारा इसे निम्नलिखित रूप में अधिनियमित किया जाए:
>
> 1. संक्षिप्त शीर्षक. – (1) इस अधिनियम को दण्ड प्रक्रिया संहिता (मध्यप्रदेश संशोधन) अधिनियम, 2007 कहा जा सकेगा ।
>
> 2. मध्य प्रदेश राज्य में इसके लागू होने में केंद्रीय अधिनियम क्रमांक 2, 1974 का संशोधन - दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 (क्रमांक 2 सन् 1974) (इसके बाद मूल अधिनियम के रूप में संदर्भित), इसके लागू होने में मध्य प्रदेश राज्य में, इसके बाद प्रदान किए गए तरीके से संशोधन किया जाएगा।

3. धारा 167 का संशोधन -.....

xxxx xxx

4. पहली अनुसूची में संशोधन - मूल अधिनियम की पहली अनुसूची में, " भारतीय दंड संहिता के तहत अपराध " शीर्षक के तहत कॉलम 6 में धारा 317, 318, 326, 363, 363 ए, 365, 377, 392 के सामने, 393, 394, 409, 435, 466, 467, 468, 471, 472, 473, 475, 476, 477 और 477 ए, जहां कहीं भी "प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट" शब्द आते हैं, उनके स्थान पर "सत्र न्यायालय" शब्द होंगे। प्रतिस्थापित किया जाए।"

7. दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 की पहली अनुसूची यह निर्धारित करने के उद्देश्य से आईपीसी के तहत अपराधों को वर्गीकृत करती है, कि कोई विशेष अपराध संज्ञेय है या गैर-संज्ञेय और जमानती या गैर-जमानती है। पहली अनुसूची का कॉलम 6 उस न्यायालय को इंगित करता है जिसके द्वारा विचाराधीन अपराध का विचारणीय करना है। ऊपर निकाले गए मध्य प्रदेश संशोधन ने विचारण के मंच को प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट के न्यायालय से सत्र न्यायालय में स्थानांतरित कर दिया है। सवाल यह है कि क्या उक्त संशोधन संभावित है और केवल संशोधन अधिसूचित होने की तारीख के बाद किए गए अपराधों पर लागू होगा या उन मामलों को

नियंत्रित करेगा जो संशोधन की तारीख पर लंबित थे या उसके लागू होने के बाद दायर किए गए होंगे। पूर्ण पीठ ने यह विचार किया है कि चूंकि संशोधन अधिनियम में लंबित मामलों पर संशोधन लागू करने के लिए कोई विशिष्ट प्रावधान नहीं है, इसलिए यह उन मामलों पर लागू नहीं होगा जो पहले से ही मजिस्ट्रेट के समक्ष दायर किए गए थे। इसका तात्पर्य यह है कि यदि संशोधन अधिनियम लागू होने की तारीख तक कोई मामला दायर नहीं किया गया था, तो यह संशोधित संहिता द्वारा शासित होगा और इसलिए केवल सत्र न्यायालय द्वारा विचारण चलाया जा सकता है। हालाँकि, दंड प्रक्रिया संहिता किसी मामले की शुरुआत की कोई परिभाषा प्रदान नहीं करती है। हालाँकि, यह सामान्य बात है कि किसी मामले को तभी स्थापित माना जाना चाहिए जब उसमें कथित अपराध का संज्ञान लेने के लिए सक्षम न्यायालय ऐसा करता है। बदले में, मजिस्ट्रेट द्वारा उसके समक्ष दायर तथ्यों की शिकायत पर संज्ञान लिया जा सकता है जो इस तरह के अपराध का गठन करता है। यह तब भी लिया जा सकता है जब पुलिस रिपोर्ट, मजिस्ट्रेट के समक्ष लिखित रूप में ऐसे तथ्यों के साथ दायर की जाती है जिससे एक अपराध बनता है। पुलिस अधिकारी के अलावा किसी अन्य व्यक्ति से सूचना प्राप्त होने पर मजिस्ट्रेट अपने ज्ञान या संदेह के आधार पर भी अपराध का संज्ञान ले सकता है। सत्र न्यायालय के मामले में, इस तरह का संज्ञान उस संबंध में विधिवत अधिकार प्राप्त मजिस्ट्रेट द्वारा कमिट करने पर लिया जाता है। इसका तात्पर्य यह है कि जब मजिस्ट्रेट किसी अपराध का संज्ञान लेता है तो मामला मजिस्ट्रेट की

अदालत में शुरू किया जाता है, ऐसी स्थिति में मामला शिकायत या पुलिस रिपोर्ट पर शुरू किया जाता है। जमुना सिंह एवं अन्य बनाम बहदई शाह एआईआर 1964 एससी 1541 मामले में इस न्यायालय का निर्णय, इस संबंध में कानूनी स्थिति को स्पष्ट रूप से बताता है। देवरापल्ली लक्ष्मीनारायण रेड्डी और अन्य बनाम नारायण रेड्डी और अन्य मामले(1976) 3 एससीसी 252 में इस न्यायालय का निर्णय भी इसी आशय का ही है, जहां इस न्यायालय ने माना कि किसी मामले को अदालत में तभी संस्थित किया जा सकता है, जब न्यायालय उसमें कथित अपराध का संज्ञान लेता है और यह संज्ञान खंड सीआरपीसी की धारा 190(1) (ए)से (सी) में निर्धारित तरीके से लिया जा सकता है। हम कमलापति त्रिवेदी बनाम पश्चिम बंगाल राज्य (1980) 2 एससीसी 91 में इस न्यायालय के फैसले का भी उल्लेख कर सकते हैं, जहां इस न्यायालय ने सीआरपीसी की धारा 190 के प्रावधानों की व्याख्या की और पहले के निर्णयों में निर्धारित कानूनी स्तिथि को दोहराया।

8. उपरोक्त घोषणाओं में न्यायिक रूप से मान्यता प्राप्त परीक्षण को मौजूदा मामले में लागू करते हुए, हमें यह मानने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि संशोधन अधिनियम लागू होने की तारीख तक अपीलकर्ता के खिलाफ मजिस्ट्रेट के समक्ष कोई मामला लंबित नहीं था। ऐसा होने पर, मजिस्ट्रेट को आरोप पत्र प्राप्त होने पर, जो अपीलकर्ता के खिलाफ एक मामले की संस्थित करने के समान था, मामले को सत्र न्यायालय के लिए

कमिट के लिए बाध्य था क्योंकि जिन अपराधों के लिए उस पर आरोप लगाया गया था उनमें से तीन केवल सत्र न्यायालय द्वारा विचारणीय थे। यह मामला संशोधन अधिनियम के प्रभावी होने के बाद शुरू किया गया था, यह निर्धारित करने के लिए कि क्या संशोधन लंबित मामलों पर भी लागू था, संशोधन अधिनियम में किसी प्रावधान की तलाश करने की कोई आवश्यकता नहीं थी क्योंकि संशोधन की तारीख तक कोई भी मामला अपीलकर्ता के विरुद्ध संस्थित नहीं किया गया था और न ही यह संशोधन अधिनियम में ऐसे किसी प्रावधान की खोज की आवश्यकता के लिए किसी न्यायालय के समक्ष लंबित था । उस दृष्टिकोण से, सत्र न्यायाधीश और उच्च न्यायालय का यह मानना पूरी तरह से उचित था कि मजिस्ट्रेट द्वारा पारित कमिटल का आदेश कानूनी रूप से वैध आदेश था और अपीलकर्ता पर केवल उसी सत्र न्यायालय द्वारा मुकदमा चलाया जा सकता था, जहां मामला सौंपा गया था। .

9. इतना कहने के बाद, अब हम इस मुद्दे की थोड़ी अलग दृष्टि से जांच कर सकते हैं। यह प्रश्न कि क्या सुनवाई के मंच से संबंधित कोई भी कानून प्रक्रियात्मक या मूल प्रकृति का है, अतीत में इस न्यायालय की कई घोषणाओं का विषय रहा है। हम इनमें से कुछ निर्णयों का उल्लेख कर सकते हैं, चाहे संक्षेप में ही क्यों न हो। न्यू इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम श्रीमती शांति मिश्रा, वयस्क (1975) 2 एससीसी 840, में यह न्यायालय मोटर वाहन अधिनियम के तहत मुआवजे के भुगतान के दावे से

निपट रहा था। संशोधित मोटर वाहन अधिनियम, 1939 के तहत दावा न्यायाधिकरण के गठन से पहले वाहन दुर्घटना के कारण, दुर्घटना के शिकार व्यक्ति की मृत्यु हो गई थी। ट्रिब्यूनल की स्थापना के बाद मृतक के कानूनी उत्तराधिकारियों ने ट्रिब्यूनल के समक्ष मुआवजे के भुगतान के लिए दावा याचिका दायर की। सवाल यह उठा कि क्या दावा याचिका इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए विचारणीय थी कि मुआवजे के भुगतान के दावे के परीक्षण के लिए मंच के परिवर्तन से पहले कार्रवाई का कारण उत्पन्न हुआ था। इस न्यायालय ने माना कि कानून में बदलाव पूर्वव्यापी रूप से लागू होता है, भले ही कार्यवाही का कारण या कार्यवाही का अधिकार फोरम में बदलाव से पहले प्राप्त हुआ हो। इसलिए, दावेदार को संशोधित कानून के अनुसार फोरम के समक्ष पहुचना होगा। इस न्यायालय ने कहा कि दावेदार के पास "कार्यवाही का निहित अधिकार" था, लेकिन "मंच का निहित अधिकार" नहीं था। यह भी माना गया कि जब तक नया फोरम व्यक्त शब्दों द्वारा केवल फोरम के निर्माण के बाद उत्पन्न होने वाली कार्रवाई के कारणों के लिए उपलब्ध नहीं होता है, सामान्य नियम इसे भूतलक्षि बनाना है। इस संबंध में निम्नलिखित अनुच्छेद उपयुक्त हैं:

> “5. धारा 110-ए और 110-एफ की स्पष्ट भाषा में यह विचार करने में कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए कि कानून में परिवर्तन केवल मंच का परिवर्तन था अर्थात विशेषण या प्रक्रियात्मक कानून का परिवर्तन था, न कि मूल कानून का।

यह एक अच्छी तरह से स्थापित प्रस्ताव है कि कानून में ऐसा परिवर्तन भूतलक्षि रूप से लागू होता है और व्यक्ति को नए फोरम में जाना पड़ता है, भले ही उसकी कार्यवाही का कारण या कार्रवाई का अधिकार फोरम के परिवर्तन से पहले अर्जित हुआ हो। उसके पास कार्यवाही का निहित अधिकार होगा लेकिन मंच का निहित अधिकार नहीं होगा। यदि व्यक्त शब्दों द्वारा नए फोरम में, केवल फोरम के निर्माण के बाद उत्पन्न होने वाली कार्रवाई के कारणों को उपलब्ध कराया जाता है, तो कानून का भूतलक्षि प्रभाव हटा दिया जाता है। अन्यथा सामान्य नियम मे, इसे भूतलक्षि बनाना है। उप-धारा (1) में घटित होने वाली अभिव्यक्तियाँ "दुर्घटना से उत्पन्न" और उप-धारा (2) में उल्लिखित "उस क्षेत्र पर जिसमें दुर्घटना हुई" स्पष्ट रूप से दर्शाती है कि फोरम में परिवर्तन का अर्थ भूतलक्षि प्रभाव से होना था, इस तथ्य की परवाह किए बिना कि दुर्घटना कब हुई। उस हद तक सरल तरीके से उत्तर देने में कोई कठिनाई नहीं हुई. लेकिन उपधारा (3) में निहित 60 दिनों की सीमा के प्रावधान ने कानून के सुस्थापित सिद्धांत को सीधे लागू करने में बाधा उत्पन्न की। यदि दुर्घटना न्यायाधिकरण के गठन से 60 दिन पहले हुई थी तो उप-धारा (3) में प्रदान की गई सीमा बाधा, कोई बाधा नहीं थी। न्यायाधिकरण में आवेदन ही

एकमात्र उपाय कहा जा सकता है। यदि ऐसा आवेदन, किसी न किसी कारण से, 60 दिनों के भीतर नहीं किया जा सका तो ट्रिब्यूनल के पास परंतुक के तहत देरी को माफ करने की शक्ति थी। लेकिन यदि दुर्घटना अधिकरण के गठन से 60 दिन से अधिक पहले हुई हो तो धारा 110-ए की उप-धारा (3) में प्रदान की गई सीमा की रोक लागू होती है। परिसीमन की इस कठिनाई के कारण, अधिकांश उच्च न्यायालयों को प्रावधान पर वापस आना पड़ा और कहा कि ऐसा मामला उपयुक्त होगा जहां न्यायाधिकरण उप-धारा (3) के प्रावधान के तहत देरी को माफ करने में सक्षम होगा, और दूसरी तरफ़ कहना है कि ट्रिब्यूनल के पास इस तरह के आवेदन पर विचार करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं होगा और ऐसी स्थिति में सिविल कोर्ट में जाने का उपाय अधिनियम की धारा 110-एफ के तहत वर्जित नहीं है।बाद का दृष्टिकोण अपनाते समय उच्च न्यायालय इस बात पर ध्यान देने में विफल रहा कि मुख्य रूप से धारा 110-ए और 110-एफ मे शामिल कानून फोरम के परिवर्तन से संबंधित कानून था।

6. हमारी राय में धारा 110-ए और 110-एफ की स्पष्ट भाषा के मद्देनजर यह उचित और युक्तियुक्त नहीं है कि मंच के

परिवर्तन के कानून को धारा 110-ए की उप-धारा (3) में प्रदान की गई परिसीमा की सीमा के लिए रास्ता दिया जाए। इसका उलटा भी होना ही चाहिए। फोरम के प्रक्रियात्मक कानून में बदलाव को प्रभावी बनाया जाना चाहिए। वर्ष 1956 में संशोधन द्वारा लाए गए कानून में बदलाव का अंतर्निहित सिद्धांत, दावेदारों को नाममात्र अदालत शुल्क के भुगतान पर दावा न्यायाधिकरण से संपर्क करने का एक सस्ता उपाय प्रदान करना था, जबकि बड़ी मात्रा सिविल कोर्ट में यथामूल्य अदालत शुल्क की भुगतान किए जाने की आवश्यकता थी।"

10. हितेंद्र विष्णु ठाकुर और अन्य आदि आदि. बनाम महाराष्ट्र राज्य और अन्य (1994) 4 एससीसी 602 मे, जिन सवालों की यह अदालत जांच कर रही थी, उनमें से एक यह था कि क्या आतंकवादी और विघटनकारी गतिविधियां (रोकथाम) अधिनियम, 1987 की धारा 20(4) का खंड (बीबी), धारा 167(2) को नियंत्रित करने वाले एक संशोधन अधिनियम द्वारा पेश किया गया था, टाडा मामलों के संबंध में सीआरपीसी प्रक्रियात्मक कानून के दायरे में थी और यदि हां, तो क्या यह लंबित मामलों पर भी लागू होगा। प्रश्न का सकारात्मक उत्तर देते हुए इस न्यायालय ने एएस आनंद, जे. के माध्यम से कहा कि संशोधन अधिनियम 43 ऑफ़ 1993 संचालन में भूतलक्षी था और यह खंड टाडा की धारा 20 की उप-धारा (4)

के (बी) और (बीबी) उन मामलों पर लागू होते हैं जो संशोधन लागू होने की तारीख पर जांच लंबित थे। न्यायालय ने प्रक्रियात्मक कानून के संचालन में भूतलक्षी होने और एक वादी के यह दावा करने के अधिकार कि उस पर किसी विशेष न्यायालय द्वारा मुकदमा चलाया जाए, के संबंध में कानूनी स्थिति का सारांश निम्नलिखित शब्दों में दिया:

> "26. xxx xxx
>
> (i) एक क़ानून जो मूल अधिकारों को प्रभावित करता है, उसे तब तक प्रभावी माना जाता है जब तक कि उसे स्पष्ट रूप से या आवश्यक इरादे से भूतलक्षी नहीं बनाया जाता है, जबकि एक क़ानून जो केवल प्रक्रिया को प्रभावित करता है, जब तक कि ऐसा निर्माण शाब्दिक रूप से असंभव न हो, उसे अपने आप में भूतलक्षी माना जाता है, और उसको विस्तारित अर्थ नहीं दिया जाना चाहिए और इसको स्पष्ट रूप से परिभाषित सीमाओं तक ही सीमित होना चाहिए।
>
> (ii) फोरम और लिमिटेशन से संबंधित कानून प्रकृति में प्रक्रियात्मक है, जबकि कार्यवाही के अधिकार और अपील के अधिकार से संबंधित कानून भले ही उपचारात्मक प्रकृति में, वास्तविक है।

(iii) प्रत्येक वादी को मूल कानून में निहित अधिकार है लेकिन प्रक्रियात्मक कानून में ऐसा कोई अधिकार मौजूद नहीं है।

(iv) एक प्रक्रियात्मक क़ानून को आम तौर पर भूतलक्षी रूप से लागू नहीं किया जाना चाहिए, जहां इसका परिणाम नई अक्षमताएं या दायित्व पैदा करना या पहले से ही किए गए लेनदेन के संबंध में नए कर्तव्य लगाना होगा।

(v) एक क़ानून जो न केवल प्रक्रिया को बदलता है बल्कि नए अधिकारों और देनदारियों को भी बनाता है, उसे संचालन में भविष्यलक्षी माना जाएगा, जब तक कि अन्यथा स्पष्ट रूप से या आवश्यक निहितार्थ द्वारा प्रदान नहीं किया जाता है।"

11. हम सुधीर जी. अंगुर और अन्य बनाम एम. संजीव और अन्य (2006) 1 एससीसी 141 मामले में इस न्यायालय के निर्णय का भी उल्लेख कर सकते हैं, जहां इस न्यायालय की तीन-न्यायाधीशों की पीठ ने शिव भगवान मोती राम सरावजी बनाम ओंकारमल ईशर दास और अन्य (1952) 54 बम एलआर 330 में बॉम्बे उच्च न्यायालय के फैसले को मंजूरी दी और यह पाया कि:

"12...यह माना गया है कि एक अदालत कानून में बदलाव पर ध्यान देने के लिए बाध्य है और कानून को उसी तरह प्रशासित करने के लिए बाध्य है, जैसे वह तब था जब मुकदमा सुनवाई के लिए आया था। यह अभिनिर्धारित किया गया है कि यदि किसी न्यायालय के पास मुकदमे की सुनवाई करने का अधिकार क्षेत्र है, जब वह निस्तारण के लिए आता है, तो वह इस तथ्य के कारण क्षेत्राधिकार मानने से इंकार नहीं कर सकता है कि जिस तारीख को इसे शुरू किया गया था, उस पर विचार करने का उसके पास कोई अधिकार क्षेत्र नहीं था। हम इन टिप्पणियों से पूरी तरह सहमत हैं..."

12. शिव भगवान मोती राम सरावजी के मामले (सुप्रा) में बॉम्बे हाई कोर्ट ने प्रक्रियात्मक कानूनों को तब तक लागू माना है, जब तक कि विधायिका स्पष्ट रूप से इसके विपरीत प्रावधान न करे। न्यायालय ने कहा:

"...अब, मुझे लगता है कि इसे एक सामान्य सिद्धांत के रूप में कहा जा सकता है कि, किसी भी पक्षकार को किसी विशेष कार्यवाही या किसी विशेष मंच पर निहित अधिकार नहीं है, और यह भी अच्छी तरह से स्थापित है कि सभी प्रक्रियात्मक कानून भूतलक्षी हैं, जब तक कि विधायिका स्पष्ट रूप से इसके विपरीत नहीं कहती । इसलिए, लागू

प्रक्रियात्मक कानूनों को उस तारीख पर लागू किया जाना चाहिए जब कोई मुकदमा या कार्यवाही विचारण या निस्तारण के लिए आती है..."

13. मौजूदा मामले में दण्ड प्रक्रिया संहिता में संशोधन से अभियुक्तों के मुकदमे के मंच को प्रथम श्रेणी मजिस्ट्रेट की अदालत से सत्र अदालत में स्थानांतरित करने का प्रभाव पड़ेगा। इस तथ्य के अलावा कि संशोधन लागू होने की तारीख तक अपीलकर्ता के खिलाफ कोई मामला शुरू नहीं किया गया था और न ही मजिस्ट्रेट ने अपीलकर्ता के खिलाफ संज्ञान लिया था, मुकदमे के मंच को स्थानांतरित करने वाला कोई भी संशोधन,संशोधन अधिनियम में इसके विपरीत किसी संकेत का अभाव, सैद्धांतिक रूप से भूतलक्षी प्रकृति का होना चाहिए। । अपीलकर्ता अपने मुकदमे के लिए फोरम के निहित अधिकार का दावा नहीं कर सकता क्योंकि ऐसा कोई अधिकार मान्यता प्राप्त नहीं है। इस मामले को ध्यान में रखते हुए, उच्च न्यायालय का ट्रायल कोर्ट द्वारा पारित आदेश में हस्तक्षेप करना उचित था।

14. उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ द्वारा तैयार किए गए प्रश्नों का उत्तर नकारात्मक धारणा में दिया गया कि, 22 फरवरी, 2008 को सीआरपीसी की पहली अनुसूची में संशोधन के प्रभावी होने के समय न्यायिक मजिस्ट्रेट प्रथम श्रेणी की अदालत में सभी लंबित मामले, उक्त संशोधन से अप्रभावित रहेंगे और ऐसे मामले, जो इस बीच, सत्र न्यायालय को सौंपे गए थे, कानून के अनुसार सुनवाई के लिए न्यायिक मजिस्ट्रेट

प्रथम श्रेणी को वापस भेज दिए जाएंगे। उस निष्कर्ष पर पहुंचने में पूर्ण पीठ ने मनुजेंद्र दत्त के मामले में इस न्यायालय के तीन फैसलों पर भरोसा जताया। मनुजेन्द्र दत्त बनाम पूर्णेदु प्रोसाद रॉय चौधरी और अन्य एआईआर 1967 एससी 1419, आयकर आयुक्त, बैंगलोर बनाम श्रीमती आर. शरदम्मा (1996) 8 एससीसी 388 और आर. कपिलनाथ (मृत) से एलआर बनाम कृष्णा (2003) 1 एससीसी 444। उपरोक्त निर्णयों का अनुपात, हमारी राय में, पूर्णपीठ के समक्ष तथ्य स्थिति पर सीधे लागू नहीं था। उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ उन मामलों से संबंधित थी जहां साक्ष्य पूरी तरह या आंशिक रूप से न्यायिक मजिस्ट्रेट प्रथम श्रेणी के समक्ष दर्ज किए गए थे, जब उन्हें दण्ड प्रक्रिया संहिता में संशोधन के अनुसार सत्र न्यायालय को सौंपा गया था। हालाँकि, उच्च न्यायालय ने जिन निर्णयों पर भरोसा किया, वे उस प्रकार के तथ्य स्थितियों पर लागू नहीं होते थे। मनुजेंद्र दत्त के मामले (सुप्रा) में अदालत में कार्यवाही समाप्त हो गई थी जिसमें मुकदमा दायर किया गया था। किसी भी दर पर, मुकदमेबाजी के लिए किसी विशेष मंच के लिए किसी निहित अधिकार का दावा नहीं किया जा सकता है। इस न्यायालय के जिन निर्णयों का हमने पहले उल्लेख किया था, वे कानूनी स्थिति को तय करते हैं, जिसमें कोई दोहराव नहीं होता है। यह भी उल्लेखनीय है कि मनुजेंद्र दत्त के मामले (सुप्रा) के फैसले को बाद में वी. धनपाल चेट्टियार बनाम येसोदाई अम्मल (1979) 4 एससीसी 214 में इस न्यायालय की सात-न्यायाधीशों की पीठ ने एक अलग कानूनी बिंदु पर खारिज कर दिया था।

15. श्रीमती आर. शरदम्मा का मामला (सुप्रा) में इस न्यायालय का निर्णय भी ऐसा ही है, जिस पर पूर्ण पीठ ने भरोसा किया, वह तथ्यों के आधार पर अलग था। वहां प्रश्न एक निरस्त अधिनियम के तहत किए गए दायित्व से संबंधित था। जिस फोरम में मामला शुरू किया गया था उसमें कार्यवाही समाप्त हो चुकी थी और क्षेत्राधिकार के संबंध में विवाद उत्पन्न होने से पहले मामला निरीक्षण सहायक आयुक्त को भेजा गया था।

16. आर. कपिलनाथ के मामले (सुप्रा) में इस न्यायालय का निर्णय, जिस पर पूर्ण पीठ ने भरोसा किया था, भी अलग था क्योंकि यह एक ऐसा मामला था जहां कर्नाटक किराया नियंत्रण अधिनियम, 1961 के तहत मुंसिफ न्यायालय के समक्ष बेदखली की कार्यवाही तब समाप्त हुई थी जब कर्नाटक किराया नियंत्रण (संशोधन) अधिनियम, 1994 लागू हुआ। उस संशोधन के द्वारा मुंसिफ न्यायालय को ऐसे मामलों में अधिकार क्षेत्र से वंचित कर दिया गया। इस न्यायालय ने माना कि फोरम में बदलाव से लंबित कार्यवाही प्रभावित नहीं हुई। इस न्यायालय ने आगे कहा कि फोरम की क्षमता को चुनौती पहली बार उठाई गई थी, वह भी इस न्यायालय के समक्ष एक अतिरिक्त आधार के रूप में और अन्य कारकों के लिए, न्यायालय मुंसिफ न्यायालय के निष्कासन मामले पर विचार करने और निर्णय देने के अधिकार क्षेत्र को बरकरार रखने के लिए झुकाव था। इस मामले में तथ्यात्मक स्थिति अलग थी।

17. अन्यथा भी पूर्ण पीठ इस विषय पर घोषणाओं की एक श्रृंखला में इस न्यायालय द्वारा घोषित कानून पर ध्यान देने में विफल रही, जिसे हम इस स्तर पर संक्षेप में संदर्भित कर सकते हैं। नानी गोपाल मित्रा बनाम बिहार राज्य एआईआर 1970 एससी 1636 में, इस न्यायालय ने घोषणा की कि प्रक्रिया से संबंधित संशोधन भूतलक्षी रूप से इस अपवाद के अधीन संचालित होते हैं कि, जो भी प्रक्रिया सही ढंग से अपनाई गई थी और पुराने कानून के तहत कार्यवाही समाप्त हुई थी, उसे फिर से नयी प्रक्रिया लागू करने के उद्देश्य से नहीं खोला जा सकता है।उस मामले में अपीलकर्ता का विचारण विशेष न्यायाधीश, संथाल परगनास द्वारा किया गया था जब भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1947 की धारा 5(3) तब भी लागू थी। धारा 5(3) को निरस्त करने वाले संशोधन अधिनियम के प्रख्यापित होने से पहले अपीलकर्ता को विशेष न्यायाधीश द्वारा दोषी ठहराया गया था । इस न्यायालय ने माना कि विशेष न्यायाधीश द्वारा सुनाई गई सजा को सिर्फ इसलिए अवैध नहीं कहा जा सकता क्योंकि 18 दिसंबर 1964 को प्रक्रियात्मक कानून में संशोधन किया गया था। इस संबंध में निम्नलिखित मार्ग उपयुक्त है:

> "…. इसलिए यह स्पष्ट है कि एक सामान्य नियम के रूप में प्रक्रिया से संबंधित संशोधित कानून भूतलक्षी रूप से संचालित होता है। लेकिन एक और समान रूप से महत्वपूर्ण सिद्धांत है, अर्थात किसी क़ानून का अर्थ इस प्रकार नहीं

लगाया जाना चाहिए कि नई अक्षमताएं या दायित्व पैदा हों या उन लेन-देन के संबंध में नए कर्तव्य अधिरोपित किए जाएं जो संशोधन अधिनियम लागू होने के समय पूरे हो गए थे - (एक देनदार में और रीवर्नज़्जा में देखें) यही सिद्धांत सामान्य क्लॉज़स अधिनियम की धारा 6 में सन्निहित है जिसका निम्नलिखित प्रभाव है:

xx xx xx (धारा 6 उद्धृत है) xx xx xx ....

इस सिद्धांत के लागू होने का प्रभाव यह है कि लंबित मामले भले ही पुराने अधिनियम के तहत संस्थित किए गए हों, लेकिन अभी लंबित है, संशोधित कानून के तहत नई प्रक्रिया द्वारा शासित होते हैं, लेकिन पुराने कानून के तहत जो भी प्रक्रिया सही ढंग से अपनाई गई और निष्कर्ष निकाला गया, उसे दोबारा नहीं खोला जा सकता है। वर्तमान मामले में, नई प्रक्रिया लागू करने का उद्देश्य. अपीलकर्ता का मुकदमा विशेष न्यायाधीश, संथाल परगनास द्वारा लिया गया था जब अधिनियम की धारा 5(3) अभी भी लागू थी। अपीलकर्ता की सजा 31 मार्च, 1962 को विशेष न्यायाधीश, संथाल परगनास द्वारा संशोधित अधिनियम लागू होने से बहुत पहले सुनाई गई थी। इसलिए अपीलकर्ता के इस तर्क को स्वीकार करना संभव नहीं है कि विशेष न्यायाधीश, संथाल परगनास

द्वारा सुनाई गई सजा 18 दिसंबर, 1964 को प्रक्रियात्मक कानून में किए गए संशोधन के कारण अवैध या किसी भी तरह से कानून में दोषपूर्ण हो गई है। हमारी राय में, उच्च न्यायालय, अधिनियम की धारा 5(3) के तहत अवधारणा को लागू करने में सही था, भले ही इसे 18 दिसंबर, 1964 को संशोधित अधिनियम द्वारा निरस्त कर दिया गया था। हम तदनुसार मामले के इस पहलू पर अपीलकर्ता के तर्क को खारिज करते हैं।"

(जोर दिया गया)

18. अनंत गोपाल शेरे बनाम बॉम्बे राज्य एआईआर 1958 एससी 915 में इस न्यायालय के निर्णय का भी संदर्भ लिया जा सकता है,जहां कानूनी स्थिति निम्नलिखित शब्दों में बताई गई थी:

"4. निर्णय के लिए प्रश्न यह उठता है कि क्या लंबित अभियोजन पर संशोधित संहिता के प्रावधान लागू होते हैं। मामले पर लागू सामान्य सिद्धांतों पर कोई विवाद नहीं है। किसी भी व्यक्ति को किसी भी प्रक्रिया में निहित अधिकार नहीं है। उसके पास केवल उस न्यायालय द्वारा या उसके लिए निर्धारित तरीके से अभियोजन या बचाव का अधिकार है, जिसमें मामला लंबित है और यदि संसद के एक

अधिनियम द्वारा प्रक्रिया का तरीका बदल दिया जाता है तो उसके पास आगे बढ़ने के अलावा कोई अन्य अधिकार नहीं है। परिवर्तित मोड में. पृष्ट 225 पर क़ानून की व्याख्या पर मैक्सवेल देखें। 2 कोलोनियल शुगर रिफाइनिंग कंपनी लिमिटेड बनाम इरविंग (1905) एसी 369, 372)। दूसरे शब्दों में प्रक्रिया के कानून में बदलाव भूतलक्षी रूप से संचालित होता है और निहित अधिकार से संबंधित कानून के विपरीत यह केवल भविष्यलक्षी नहीं है।"

19. उपरोक्त चर्चा का निष्कर्ष यह है कि लंबित मामलों पर लागू होने वाले संशोधित प्रावधान को मानने वाली पूर्ण पीठ द्वारा लिया गया विचार सैद्धांतिक रूप से सही नहीं है। इसलिए, पूर्ण पीठ द्वारा दिया गया निर्णय खारिज किया जाता है, लेकिन केवल भविष्यलक्षी तौर पर। हम ऐसा इसलिए कह रहे हैं क्योंकि पूर्ण पीठ के आदेशों के तहत सत्र न्यायालय से प्रथम श्रेणी मजिस्ट्रेट की अदालत में वापस भेजे गए मामलों की सुनवाई भी पूरी हो चुकी होगी या अंतिम चरण में हो सकती है। ऐसे मामलों में इस स्तर पर फोरम में कोई भी बदलाव उन मामलों में अभियुक्तों के लिए अनावश्यक और टालने योग्य कठिनाई का कारण बनेगा, यदि उन्हें संशोधन और हमारे द्वारा व्यक्त किए गए विचार के आलोक में सुनवाई के लिए सत्र न्यायालय के लिए कमिट किया जाता है।

20. अनावश्यक कठिनाई और विसंगतियों से बचने के लिए, चाहे कुछ भी हो, संभावित ओवररूलिंग के सिद्धांत को इस न्यायालय द्वारा लागू किया गया है । उस सिद्धांत को पहली बार इस न्यायालय द्वारा आईसी गोलक नाथ और अन्य बनाम पंजाब राज्य और अन्य एआईआर 1967 एससी 1643 में लागू किया गया था। इसके बाद अशोक कुमार गुप्ता और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य । (1997) 5 एससीसी 201 मे इस न्यायालय का निर्णय आया।

21. बाबूराम बनाम सीसी जैकब और अन्य (1999) 3 एससीसी 362 मे, इस न्यायालय ने निपटाए गए मुद्दों को फिर से खोलने, कार्यवाही की बहुलता और परिहार्य मुकदमेबाजी से बचने के लिए एक उपकरण लागू किया और अपनाया। कोर्ट ने कहा:

> "5. क़ानून की संभावित घोषणा शीर्ष अदालत द्वारा सुलझाए गए मुद्दों को फिर से खोलने से बचने और कार्यवाही की बहुलता को रोकने के लिए नवप्रवर्तित एक युक्ति है। अनिश्चितता और परिहार्य मुकदमेबाजी से बचने के लिए भी अपनाई गई एक युक्ति है। क़ाकानूननून का भविष्य लक्षी घोषणा के उद्देश्य से, यह माना जाता है कि घोषणा की तारीख से पहले कानून की घोषणा के विपरीत की गई सभी कार्रवाइयां मान्य हैं। यह सार्वजनिक हित में किया गया है इसलिए, अधीनस्थ मंच जो इस न्यायलय द्वारा घोषित

क़ानून को लागू करने के लिए बाध्य हैं वे भविष्य में उत्पन्न होने वाले मामलों पर भी इसी तरह के आदेश को लागू करने के लिए बाध्य है। ऐसे मामलों में क़ानून की ऐसी घोषणा के आधार पर हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है,जहां कानून की ऐसी घोषणा से पहले उक्त सिद्धांत के विपरीत निर्णय लिए गए हैं, ..."

(जोर दिया गया)

22. इसी आशय का हरीश ढींगरा बनाम हरियाणा राज्य एवं अन्य में इस न्यायालय का निर्णय है। (2001) 9 एससीसी 550 जहां इस न्यायालय ने कहा:

"7. कानून की संभावित घोषणा शीर्ष अदालत द्वारा सुलझाए गए मुद्दों को फिर से खोलने से बचने और कार्यवाही की बहुलता को रोकने के लिए नवप्रवर्तित एक युक्ति है। अनिश्चितता और परिहार्य मुकदमेबाजी से बचने के लिए भी अपनाई गई एक युक्ति है। कानून की संभावित घोषणा के उद्देश्य से, यह माना जाता है कि घोषणा की तारीख से पहले कानून की घोषणा के विपरीत की गई सभी कार्रवाइयां मान्य हैं। यह व्यापक सार्वजनिक हित में किया गया है इसलिए, अधीनस्थ मंच जो इस न्यायलय द्वारा घोषित

क़ानून को लागू करने के लिए बाध्य हैं वे भविष्य में उत्पन्न होने वाले मामलों पर भी इसी तरह के आदेश को लागू करने के लिए बाध्य है। चूंकि यह निर्विवाद है कि एक अदालत किसी फैसले को पलट सकती है, इसलिए ऐसा कोई वैध कारण नहीं है कि क्यों न इसे भविष्य तक ही सीमित रखा जाए, ना की अतीत तक। संभावित अधिनिर्णय न केवल संवैधानिक नीति का एक हिस्सा है बल्कि न्यायिक कानून का ही नहीं, बल्कि घूर्णी निर्णय का एक विस्तारित पहलू भी है।"

23. सरवन कुमार और अन्य बनाम मदन लाल अग्रवाल (2003) 4 एससीसी 147, इस न्यायालय ने माना कि, हालांकि, संभावित ओवररूलिंग का सिद्धांत शुरू में संविधान के तहत उत्पन्न होने वाले मामलों पर लागू किया गया था, लेकिन बाद के फैसलों ने इसे विभिन्न कानूनों के तहत मामलों पर भी लागू कर दिया है। न्यायालय ने कहा:

"15. "संभावित ओवररूलिंग" का सिद्धांत शुरू में संविधान के तहत उत्पन्न होने वाले मामलों पर लागू किया गया था, लेकिन हम समझते हैं कि इसे बाद में क़ानून के तहत उत्पन्न होने वाले मामलों पर भी लागू किया गया है। "भविष्यलक्षी ओवररूलिंग" के सिद्धांत के तहत न्यायालय द्वारा घोषित कानून, केवल भविष्य में उत्पन्न होने वाले

मामलों पर लागू होता है और उन मामलों पर इसकी प्रयोज्यता को बचाया जाता है जो अंतिम परिणाम प्राप्त कर चुके हैं क्योंकि निरसन अन्यथा उन लोगों के लिए कठिनाई पैदा करेगा जिन्होंने इसके अस्तित्व पर भरोसा किया था। "भविष्यलक्षी ओवररूल्लिंग" के सिद्धांत का आह्वान अदालत के विवेक पर छोड़ दिया गया है ताकि वह अदालत के समक्ष मामले या मामले के न्याय के अनुरूप ढल सके।"

(जोर दिया गया)

24. राजस्थान राज्य पथ परिवहन निगम एवं अन्य बनाम बाल मुकुंद बैरवा (2009) 4 एससीसी 299 मे, इस न्यायालय ने न्यायमूर्ति बेंजामिन एन. कार्डोजो के व्याख्यानों के प्रसिद्ध संकलन द नेचर ऑफ ज्यूडिशियल प्रोसेस में की गई टिप्पणियों पर भरोसा किया - कि "अधिकांश मामलों में, एक निर्णय होगा भूतलक्षी. यह केवल वहीं है, जहां कठिनाइयां बहुत अधिक हैं, भूतलक्षी संचालन को रोक दिया गया है।

25. वर्तमान मामला, हमारी राय में, एक ऐसा मामला है जिसमें हमें यह स्पष्ट करने की आवश्यकता है कि मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ के फैसले को खारिज करने से उन मामलों पर कोई असर नहीं पड़ेगा जिन पर पहले ही मुकदमा चल चुका है या जो पहले ही उन्नत चरण में, उक्त निर्णय के संदर्भ में, मजिस्ट्रेट के समक्ष है।

26. उपरोक्त टिप्पणियों के साथ, यह अपील विफल हो जाती है और इसे खारिज कर दिया जाता है।

आर.पी.

अपील ख़ारिज की गई।

यह अनुवाद आर्टिफ़िश्यल इंटेलिजेंस टूल "सुवास" की सहायता से न्यायिक अधिकारी श्री बीना मीना (आर.जे.एस.) द्वारा किया गया है ।

<u>अस्वीकरण</u>- इस निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यवहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।

*****